कि‍रदार_-_२_अंतरंग_कहानी

“मैं यहाँ नहीं रहती, मुंबई से कुछ दि‍नों के लि‍ए यहाँ आई हूँ !”

“वैसे मैं भी मुंबई अक्सर आती हूँ ! पर आप तो मुझे अपने घर बुलाने से रही ! क्यों न आप मेरे घर आएँ, मैं वसंत-कुञ्ज में रहती हूँ।”

“तो इसका घर भी है !” मेरी आँखों में उतर आया कटाक्ष उससे छुपा नहीं रहा।

“कल आइये न ! लंच साथ करते हैं ! मैं बहुत अच्छा “शुक्तो” बनाती हूँ।”

“इस बार रहने दो, अगली बार जब दि‍ल्ली आऊँगी तब तुम्हारे यहाँ आऊँगी !”

” नहीं नहीं ! कल क्यों नहीं?” अगर मुझे अच्छी तरह जानेंगी नहीं तो आपकी कहानी अधूरी रह जाएगी !” उसने शरारती मुस्कराहट से कहा।

मैं फि‍र उसकी आँखों की गरि‍फ्त में आ गई, बोली- चलो कल मि‍लते हैं, लेकि‍न मुझे वसंत-कुञ्ज का ज़रा भी आइडि‍या नहीं।”

“मैं आपके मोबाईल पर आपको रास्ता समझाती जाऊँगी और वैसे भी ‘कोर्नर पॉइंट’ से आप मेरा पता पूछेंगी तो उनका लड़का आपको मेरे घर तक पहुँचा देगा। वह ऐसे बात कर रही थी जैसे पक्की गृहस्थि‍न हो !

मुझे लंच का नि‍मंत्रण दे वह उठ खड़ी हुई- अब चलती हूँ, कल आपका इंतज़ार करुँगी। ‘डि‍च’ मत करि‍येगा !

और वह हवा में हाथ हि‍लाते हुए मुड़ गई।

वह चली गई और मुझे सोचता छोड़ गई !

टूटती वर्जनाएँ और उसका परत दर परत खुलता मन मेरे दि‍ल और दि‍माग को बौखला गया। उसके मन पर कोई बोझ नहीं, चाहतों पर कोई बंधन नहीं और तो और कोई अपराध बोध भी नहीं !

पर मैं ऐसी गलती नहीं कर सकती, मैं उसके घर सुबोध को बि‍ना बताए नहीं जाऊँगी, पर सुबोध से क्या कहूँगी, आज दि‍न भर कहाँ रही? दोस्ती भी की तो ऐसी लड़की से जो अपनी शर्तों पर अपनी पसंद के पुरुषों का साथ चुनती है !

“व्हाट एन अचीवमेंट !”

उफ़ क्या सोचेंगे सुबोध ! “तुम्हें दोस्ती करने के लि‍ए ऐसी ही लड़की मि‍ली थी?”

तब मेरे पास क्या जवाब होगा? इसी उधेड़बुन में उलझी में होटल पहुँच गई। दि‍माग थक चुका था इसलि‍ए लेटते ही सो गई। सुबोध के आने पर जगी तो सुबोध मारे ख़ुशी के झूम रहे थे, कम्पनी ने उन्हें मार्केटि‍ग डायरेक्टर के खि‍ताब से नवाज़ा था

उनका जोश कारा बोस के जि‍क्र से कहीं ठण्डा न पड़ जाये ऐसा सोच कर मैंने इस बात को वहीं दबा दि‍या। वैसे भी में कौन सा जा ही रही हूँ जो उसके बारे में बात करूँ ! और फि‍र मैं सुबोध की ख़ुशी में ऐसी शामि‍ल हुई कि‍ फि‍र रात भर कारा

बोस दि‍माग में लौट कर आई ही नहीं !डि‍नर कर कर लौटे तो सुबोध अपने मार्केटि‍ग डायरेक्टर के मि‍ले तमगे में पूरी तरह डूब चुके थे, करि‍यर में मि‍ली सफलता के सुरूर का असर उनकी चाल से भी छलक पड़ रहा था।

मैं कपड़े बदल कर जब बिस्तर पर पहुँची तो सुबोध को नींद आ चुकी थी, आधी रात तो बीत ही गई थी।

सुबह आँख देर से खुली।

सुबोध न्यूज़ पेपर के साथ चाय की चुस्कियाँ लेते दिखे। आज जितना खुश मैंने सुबोध को कभी नहीं देखा था।

मुझे चाय का कप थमाते हुए बोले- सभी अखबारों के बिजिनेस पेज पर मेरे ऊपर राइट अप है। अब यह मीडिया अलग पीछे लग जायेगा ! आज 10 बजे बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स की मीटिंग भी है।

मैं समझ गई, अभी जिम्मेदारियाँ कम नहीं थी, ऊपर से यह नया प्रमोशन वक्त को लेकर मेरे और सुबोध के बीच खींचतान बढ़ जाएगी।

मेरे मोबाईल पर मैसेज बीप बज उठी। मैसेज पढ़ा, लिखा था- लंच पर आपका इंतज़ार करुँगी !

सुबह सुबह मैसेज की शक्ल में कारा बोस फिर प्रकट हो गई। मैं अभी तक सुबोध को उसके बारे में कुछ भी बताने की हिम्मत नहीं जुटा पाई थी। मैंने धीरे से बात शुरू की- आज मेरा लंच बाहर है।

“तो जाओ न ! एन्जॉय योर सेल्फ !”

मेरा लंच कहाँ है, किसके साथ है ! सुबोध ने पूछना भी जरूरी नहीं समझा। मैंने भी अपने आपको समझा लिया, ऐसी क्या गलती कर रही हूँ जो सुबोध को अभी से बता कर परेशान कर दूँ। उनसे हर बात शेयर करना जरूरी भी तो नहीं, बच्ची थोड़ी

न हूँ जो कोई मुझे बरगला लेगा ! भगवान् जाने जाती भी हूँ या नहीं? अगर गई तो वहाँ से लौट कर सुबोध को सारा किस्सा सुनाऊँगी।

कड़कती ठण्ड और धूप का नाम तक नहीं, दोपहर होने तक पता नहीं किस तलाश के पीछे में उसके घर के लिए निकल पड़ी।

उसका घर ढूंढने में कोई मुश्किल नहीं हुई, कुछ ही समय बाद में उसके फ्लैट के सामने खड़ी थी। मैंने कंपकंपी के साथ डोरबेल बजा दी।

दरवाज़ा उसी ने खोला, बसंती रंग के सलवार-कुरते में वह खिली खिली धूप सी लगी। घर के अन्दर कदम रखने से पहले की सिहरन, कमरे में बसे कपूर के अरोमा की वजह से गुनगुनी गर्माहट में तबदील हो गई।

जहाँ तक नज़र गई, हर कोना खूबसूरत और सुकून भरा लगा पलभर में जैसे में सारी दुनिया घूम आई।

“अच्छा तो तुम आर्ट कलेक्टर भी हो?” उसकी पेंटिंग्स के कलेक्शन को देख कर मैंने पूछा।

“मैं कुछ इकठ्ठा नहीं करती, पर हाँ, पेंटिंग मेरा शौक है।” उसने गंभीरता से कहा।

संतरी रंग की दीवार पर तितलियों के कई चित्रों को उसने फ्रेम करा कर सजा रखा था, दूसरी दीवार पर केनवस की बहुत बड़ी पेंटिंग लगी थी जिसमें नीले आकाश की गहराइयों को कमरे में खड़े होकर भी महसूस किया जा सकता था।

मुझे उन्हें निहारता देख वह बोली- ओरेंज कलर को मैं मजबूत और गर्म-गुनगुने रंग की शक्ल में देखती हूँ और तितलियाँ मुझे रंग और खुशबू के एहसास से भरती हैं।

“और नीला रंग?”

“नीला रंग मुझे शांति और सुकून देता है। इस रंग को देख कर मैं रिलैक्स हो पाती हूँ ऐसे जैसे मेरी खिड़की के बाहर नदी बह रही हो।”

घर को फर्नीचर से सजाने की बजाये उसने खूबसूरत चीजों से सजाया था। फर्नीचर के नाम पर चार गुजराती काम की छोटी चौकियाँ सजी थी।

‘कहाँ बैठूँ?’ का सवाल लिए मैं कमरे में जगह तलाशने लगी। एक नागा टोकरी में ढेर साड़ी सीपियाँ भरी रखी दिखीं। मैंने उसके पास रखी पीढ़ी पर बैठते हुए उससे पूछा- तुम शायद सपने बहुत देखती हो !

“अब यह मत कहियेगा कि सपने देखना भी मेरा हक़ नहीं है। हाँ मैं सपने देखती हूँ पर मैं उनके बारे में बात नहीं करना चाहती ! सपने ही मेरी पूंजी हैं, उन्हें मैं किसी को दिखाना नहीं चाहती, कहीं आप उनमें से कुछ चुरा लें तो?”

मैं हंस दी- तुम्हारे इस घर में और कौन कौन है? मतलब तुम्हारा परिवार?

दर्द की कुछ हल्की लकीरें उभरी और खो गई बिना किसी स्टाइल में बंधे अपने बालों में उसने अपनी उँगलियाँ उलझा ली जैसे कुछ छिपा रही हो, नर्म और मुलायम बाल धीरे धीरे फिसलने लगे- मैं अकेली ही रहती हूँ !

कहते हुए वह मुड़ी, शायद रसोई में जा रही थी।

मैं उठी और उसके पीछे हो ली ! घर में वह अकेली है, यह मुझे पता था।

रसोई में खाने की महक भूख जगा रही थी।

“पहले कुछ पियेंगी जूस या फ्रेश लाइम?” पूछते हुए उसने फ्रिज खोला।

“कुछ भी !” कहने के साथ मुझे लगा कि मेरी जुबां तालू से चिपक गई है।

उसका काम करने का सलीका उसके पूरे व्यक्तित्व से दस हाथ आगे था। जूस का गिलास थामे हम दोनों ड्राइंगरूम में आ गए। मेरी असहजता उससे छिपी नहीं रही।

“आप आराम से बैठें, यहाँ कोई नहीं आता।”

“क्या मतलब?”

“यही कि मेरा घर मेरे प्रोफेशन का हिस्सा नहीं है।” मुझे उसकी ढिटाई भद्दी लगी।

“खूबसूरत नाम रख देने से कोई गलत काम सुधर नहीं जाता, तुम जो कर रही हो वो गलत है और गलत ही रहेगा। और एक बात ! ऐसा कब तक चलेगा? तुम न सही पर उम्र तो थक जाएगी।”

वह शायद मेरे हर सवाल का जवाब देने को तैयार बैठी थी- एक वक्त ऐसा आता है जब शक्ल बदलने लगती है, मुरझाये संतरों की सी चमड़ी हर औरत के मन का डर होती है। हो सकता है आपका भी हो। मैं उस दौर का सामना भी कर लूंगी

शायद तब तक रिटायर कर जाऊँ या पहले ही ऐसा समय कभी भी आ सकता है।

उसके बोलने के अंदाज़ से लगा जैसे संन्यास लेने वाली हो !

मेरी चुभती नज़र को वह झेल गई और अपनी बात कहती रही।

“सही मायने में जब करियर शुरू किया था तब मैं भी आपकी तरह ही सोचती थी पर अनुभवों ने सिखाया कि दिमाग का इस्तेमाल चाहे जितना भी करो, पर मर्द ! मर्द हमें औरत महसूस कराने से नहीं चुकता। आप चाहे अपने आपको करियर

वुमन, वाइफ, हॉउस-वाइफ कुछ भी कहें पर आपकी हकीकत सिर्फ आप ही जानती है कोई दूसरा नहीं... इसलिए मैं जिस हाल में हूँ, फिलहाल खुश हूँ।”

शब्दों को चुनने का उसका ख़ास तरीका था, वह बहुत चालाकी से अपनी सोच को मार्केट करने में सफल हो जाती थी। उसका मनना था कि कोई कामयाबी बेदाग़ नहीं हो सकती।

“आप चाहें तो बेतकल्लुफ होकर मेरे घर में घूम सकती हैं, मैं तब तक खाना लगाती हूँ।”

उसकी पेंटिंग्स, किताबें, कट ग्लास, टेराकोटा और ब्लू पोटरी का बेहतरीन कलेक्शन पूरे घर में सजा था। कमरे में सजी किसी चीज़ से बेवजह टकरा न जाऊँ, इसलिए छोटे छोटे कदम लेती मैं इधर-उधर टहलती रही और उसकी बातें भी सुनती

रही।

म्यूज़िक सिस्टम पर एक नशीली धुन बज रही थी। उसके पास कोने में क्रिस्टल के एक बॉल में ढेर सारे रंग बिरंगे चिकने पत्थर पड़े थे। उन पत्थरों के साथ पड़े थे कई विजिटिंग कार्डस।

मुझे विजिटिंग कार्ड्स रखने का यह ढंग बड़ा अजीब लगा।

थोड़ा झुक कर देखा तो उन पर छपे कुछ नाम बड़े वजनदार लगे।

जाने अनजाने मेरा हाथ उनकी तरफ बढ़ गया। कुछ ही कार्ड्स ऊपर-नीचे किये होंगे कि एक कार्ड पर जा कर मेरी नज़र अटक गई।

मैं ठण्डी पथराई आँखों से कार्ड को देखती रह गई।

तभी उसने मुझे खाने की मेज़ से आवाज़ दी- अरे आप क्या देखने लगी? वह मेरे क्लाइंट्स का कोना है। सभी विजिटिंग कार्ड की शक्ल में यहाँ रहते हैं। उन्हें वहीं पड़ा रहने दीजिये।

मैंने कार्ड को उठा कर अपनी साड़ी के पल्लू में छिपाया और लड़खड़ाते हुए डायनिंग टेबल तक पहुँची, कहा- सुनो, मैं अब चलती हूँ। खाना फिर किसी दिन खाऊँगी।

मैं बड़ी मुश्किल से सिर्फ इतना ही कह पाई और दरवाज़े की तरफ बढ़ गई।

मेरा दर्द से निचुड़ा चेहरा देख वह वहीं थम गई।

काँटों की तरह कई सवाल मेरे दिलोदिमाग पर एक साथ उग आये पर मैं उनका जवाब पाने के लिए वहाँ रुकी नहीं।

उसके दरवाज़े से बाहर निकलते ही ठण्डी धूप की रोशनी में मैंने चुरा कर लाये गए कार्ड पर छपा नाम दोबारा पढ़ा- ‘सुबोध राय चौधरी’

कार्ड की छपाई बहुत ताज़ी लगी, सुबोध की महक अभी तक कार्ड से अलग नहीं हुई थी पर मैं सुबोध से एक ही झटके में कट गई।

अपने घर को संजोने के लिए कितिने जतन कियि। सुबोध से जुड़ी मेरी आस्था और वश्विास और मेरी इच्छाओं और संकल्पों की शक्ल में पछिले 25 सालों से मेरे अन्दर कितिने ही रूपों में पलता रहा। मेरे हस्सिे आई इस हार का न मैं गला घोंट सकती

हूँ और न ही स्वीकार कर सकती हूँ।

अपनी कहानी के लिए करिदार ढूंढने नकिली मैं खुद एक करिदार बन गई।

अब कहानी कसि पर लखिूँ अपने पर या कार बोस पर ?